होना आवश्यक है, अन्यथा वह माया द्वारा निर्दिष्ट कार्यों में व्यस्त हो जायगा। माया के संसर्गवश दिव्य होने पर भी आत्मा प्राकृत गुणों को ग्रहण कर लेता है। इस दुःसंग के दुष्प्रभाव से आत्मा को शुद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि शास्त्र-विहित स्वधर्म का आचरण किया जाय। परन्तु यदि आत्मा अपने स्वरूपभूत कर्म—कृष्णभावना में ही तत्पर है, तो वह जो कुछ भी करता है, वह उसके कल्याण के लिए पर्याप्त है। श्रीमद्भागवत से सिद्ध है—

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभुदमुष्य किं को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः।।

'कृष्णभावना को अंगीकार करके जो मनुष्य शास्त्र के अनुसार स्वधर्म-पालन तो नहीं करता; परन्तु साथ में, भक्तियोग का भी भलीभाँति सम्पादन नहीं कर पाता, वह यदि पतित भी हो जाय, तो भी उसकी हानि नहीं होगी। इसके विपरीत यदि आत्मशुद्धि के लिए शास्त्रीय-विधान का पालन किया जाय, तो भी कृष्णभावना के अभाव में उस सबसे क्या लाभ?' (श्रीमद्भागवत १.५.१७)

अतएव शुद्धि कर्मों की सार्थकता इसी में है कि कृष्णभावना की प्राप्ति हो जाय। इस प्रकार सिद्ध होता है कि संन्यास आदि सब शुद्धि की पद्धतियों का चरम लक्ष्य कृष्णभावनाभावित होने में सहायता प्रदान करना है, जिसके बिना सम्पूर्ण उद्यम विफल हो जाते हैं।

3/3

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।६।।

कर्मेन्द्रियाणि=पाँच कर्मेन्द्रियों का; **संयम्य**=दमन करके; **यः**=जो; **आस्ते**=रहता है; **मनसा**=मन से; **स्मरन्**=चिन्तन करता; **इन्द्रियार्थान्**=इन्द्रियों के विषयों को; **विमूढ**=मूर्ख; **आत्मा**=पुरुष; **मिथ्याचारः**=दम्भी; **सः**=वह; **उच्यते**=कहा जाता है।

अनुवाद

जो मनुष्य कर्मेन्द्रियों का हठ से दमन करके मन से इन्द्रिय-विषयों का चिन्तन करता है, वह निस्सन्देह अपने को भ्रम में डालता है और मिथ्याचारी कहलाता है।।६।।

तात्पर्य

ऐसे अनेक कपटी हैं, जो कृष्णभावनाभावित कर्म नहीं करते, वरन् ध्यान का पाखण्ड करते हुए चित्त द्वारा विषय-चिन्तन में ही तन्मय रहते हैं। भ्रान्त अनुयायियों को छलने के लिए वे नीरस दर्शन पर भी प्रवचन किया करते हैं। परन्तु इस श्लोक के अनुसार इन्हें परम धूर्त ही जानना चाहिए। इन्द्रियतृप्ति के लिए समाज में कोई भी कपट-रूप धारण कर लेना बड़ा सरल है; परन्तु यदि स्वधर्म का पालन किया जाय, तो क्रमशः आत्मशुद्धि हो सकती है। इसके विपरीत, अपने को 'योगी' बताते हुए भी जो इन्द्रियतृप्ति-दायक भोगों का अन्वेषण किया करता है वह चाहे